इकाई 1 व्यक्तियों की अभिनय करने की योग्यता : कुशल, विदग्ध, प्रगल्भ एवं जितश्रमी

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 व्यक्तियों की अभिनय करने की योग्यता : कुशल, विदग्ध, प्रगल्भ एवं जितश्रमी

1.3 सारांश

1.4 शब्दावली

1.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- अभिनय करने वाले व्यक्तियों के गुणों कुशल, विदग्ध, प्रगल्भ एवं जितश्रमी वाले अभिनेताओं के बारें में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- अभिनय करने वाले व्यक्तियों के गुणों से युक्त भरतमुनि के सौ पुत्रों के नामों को भी जान सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र में प्रयुक्त तकनीकि शब्दावली का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।

1.1 प्रस्तावना

पंचम वेद नाट्यवेद तो सार्ववर्णिक है और तीनों लोकों का भावानुकीर्तन रूप है। मनुष्य जीवन के मंगल के लिए नाट्य में न जाने कितने तत्वों का संकलन होता है। कहीं धर्म, कही विनोद, कही काम, कही हास्य, कही शम और कही वध का भी प्रदर्शन इसमें होता है। धार्मिकों के लिए धर्म का, दुर्विनीतों के लिए संयम, विनीतों के लिए दमन क्रिया, शूरों और अभिमानियों के लिए उत्साह, दुख पीड़ितों के लिए धैर्य, अर्थोपजीवियों के लिए अर्थ तथा उद्विग्न चित्त को धैर्य प्रदान करता है। नाना प्रकार के भावों और अवस्थाओं से परिपूर्ण लोकवृत्त का सजातीय अनुकरण रूप यह नाट्य होता है। यह नाट्य विश्वजीवन की ऐसी विशाल रंगवेदिका है, जिस पर कौन ज्ञान, कौन सी विद्या, कौन सी कला और कौन सा कर्म है, जिसका नाट्य में प्रदर्शन नहीं होता है। इस इकाई में व्यक्तियों की अभिनय करने की योग्यता : कुशल, विदग्ध, प्रगल्भ एवं जितश्रमी में पितामह ब्रह्मा की अनुलघनीय आज्ञा पाकर भरत ने नाट्यवेद का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया और फिर नाट्याचार्य के हैसियत से अपने पुत्रों को नाट्यवेद का अध्यापन किया तथा साथ ही पूर्ण रूप से उनके अभिनेयात्मक प्रयोगों को भी बताया। अभिनय की योग्यता के सन्दर्भ में कुशल, विदग्ध, प्रगल्भ एवं जितश्रमी योग्यता वाले ऋषियों (सौ पुत्रों) के द्वारा नाट्य प्रयोगों को कुशलतापूर्वक प्रदर्शित किया जायेगा–

श्रुत्वा तु शक्रवचनं मामाहाम्बुजसंभवः।
त्वं पुत्रशतसंयुक्तः प्रयोक्ताऽस्य भवानघ।।

नाट्यशास्त्र, 1/24

विष्णु की नाभि से उद्भूत कमल ही है उद्गम स्थल जिनका ऐसे ब्रह्मा ने इन्द्र की उक्त सलाह सुनकर मुझे 'पापरहित' (अनघ) ऐसा सम्मान सूचक सम्बोधन करते हुए कहा तुम अपने सौ पुत्रों के साथ इस नाट्य का प्रयोग करो।

आज्ञापितो विदित्वाऽहं नाट्यवेदं पितामहात्।
पुत्रानध्यापयामास प्रयोगं चाऽपि तत्त्वतः।।

नाट्यशास्त्र, 1/25

इस इकाई में अभिनय करने वाले भरतमुनि के सौ पुत्रों के नाम एवं कुशल, विदग्ध, प्रगल्भ एवं जितश्रमी अभिनेता के गुणों को स्पष्ट किया जायेगा।

1.2 व्यक्तियों की अभिनय करने की योग्यता : कुशल, विदग्ध, प्रगल्भ, जितश्रमी

मनुष्यों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपने भावों और विचारों को दूसरों तक पहुँचावे। इसके लिए मनुष्य साधाारणतया शब्दों का प्रयोग करता हैं। इसके अतिरिक्त कभी इंगित से तथा नृत्य गीत आदि के द्वारा वह अपने भाव प्रकट करता है। मनोरंजनार्थ दूसरों का अनुकरण करने की प्रवृत्ति भी मनुष्य में स्वाभाविक है। अतएव धनंजय ने दशरूपक में अनुकरण को ही नाट्य का मूल माना है और दूसरे की अवस्था के आरोप के कारण इसका रूपक नाम माना है।

"अवस्थानुकृतिर्नाट्यम। रूपकं तत्समारोपात्।"

दशरूपक 1/7

इस अनुकरण को जब कथनोपकथन या वार्तालाप, संगीत, नृत्य, वेशभूषा एवं भावभंगी आदि से समन्वित कर देते हैं तथा उसे नाट्य का रूप दे देते हैं, तभी नाटक का प्रारम्भ हो जाता है। भारतीय नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति की विवेचना करते हुए महामुनि भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है कि सम्पूर्ण देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि हमें ऐसी मनोरंजन की वस्तु दीजिए जो दृश्य और श्रव्य दोनों हो, जिसको चारों वर्णों के व्यक्ति समान रूप से अपना सकें। उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा ने चारों वेदों से सारभाग लेकर पाँचवें वेद (नाट्यवेद) की सृष्टि की। ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य (संवाद, कथनोपकथन आदि) सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस के तत्त्वों को लिया।

एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसंभवम्।।
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।

नाट्यशास्त्र, 1/16–17

भरतमुनि के कथन को यदि स्थूल रूप में भी लिया जाय तो यह स्पष्ट है कि नाटक के लिए चार तत्त्वों की विशेष आवश्यकता है, अर्थात् संवाद, संगीत अभिनय और रस।

ये चारों तत्त्व चारों वेदों में प्राप्य हैं। इस प्रकार नाट्यवेद को उत्पन्न कर ब्रह्मा ने इन्द्र से कहा कि मैंने दशरूपकात्मक इतिहास की रचना कर दी। अब देवताओं में उसके अभिनय का प्रचार करो–

''उत्पाद्य नाट्यवेदं तु ब्रह्मोवाच सुरेश्वरम्।
इतिहासो मया सृष्टः स सुरेषु नियुज्यताम्।।''

नाट्यशास्त्र, 1/19

यहाँ पर 'इतिहास' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ होता है–इति+ह+आस=ऐसा अवश्य था, अर्थात् बीती हुई महत्वपूर्ण घटनाएँ ही 'इतिहास' हैं। नाट्य की उत्पत्ति भी एक घटना है जिसके वृतान्त के वर्णन को 'इतिहास' कहा जाय तो यह अत्युक्ति नहीं है। आचार्य अभिनवगुप्त ने प्रकृत स्थल पर इतिहास का अर्थ 'दशरूपक' किया है। नाट्यवेद में दशरूपकों के उद्भव और विकास का विवेचन होने से यह इतिहास कहा जा सकता हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रयुक्त 'इतिहास' शब्द एवं उसकी परिभाषा यहाँ घटित नहीं होती।

ब्रह्मा जी चूँकि महात्मा थे तो सर्ववेदी भी या सर्ववेत्ता भी थे। उन्हें भगवान इसलिए कहा गया कि वे सर्वविद होने के कारण किसी भी प्रकार का ग्रन्थ रचने में समर्थ थे। इसलिए उन्होंने जो नाट्यवेद नामक पंचम वेद रचा, वह न केवल चारों वेदों से सम्बद्ध था, अपितु उन वेदों के आयुर्वेदादि उपवेदों से भी सम्बद्ध था। कहने का तात्पर्य यह है कि नाट्यवेद एक वेदसम्मत रचना होती हुई भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती थी–

वेदोपवेदैः सम्बद्धो नाट्यवेदो महात्मना।
एवं भगवता सृष्टौ ब्रह्मणा सर्ववेदिना।।

नाट्यशास्त्र, 1/18

इन्द्र को इस प्रकार ब्रह्म जी ने निर्देश दिया कि नाट्यवेद की सृष्टि करके मैंने इतिहास की रचना की है उस धरोहर को स्थापित करें–

कुशला ये विदग्धाश्च प्रगल्भाश्च जितश्रमाः।
तेष्वयं नाट्यसंज्ञो हि वेदः संक्राम्यतां त्वया।।

नाट्यशास्त्र, 1

अर्थात् अपने देवों से ऐसे पात्रों का चयन करो जो इस–

1. नाट्यसंज्ञक वेद के ग्रहण धारण के योग्य हो, **(कुशल)**
2. उसके विषय में ऊहापोह तर्क–वितर्क करने में समर्थ हों, **(विदग्ध)**
3. जिससे रंगमंच पर आकर वे दर्शकों के सामने बोलने में संकोच का अनुभव बिल्कुल न करें, **(प्रगल्भ)**
4. जो जितश्रम हो, अर्थात् अभिनय करते–करते कभी थकान का अनुभव न करें। **(जितश्रमी)** इसके लिए उनका व्यायामशील होना नितान्त आवश्यक है।

उक्त गुणों से सम्पन्न नट ही इस नाट्यवेद का सम्यक् व्यवहार कर सकता है। ब्रह्मा से देवताओं में नाट्य के विनियोजन की बात सुनकर हाथ जोड़ते हुए इन्द्र ने प्रणत हो पितामह से निवेदन किया हे भगवन्! ये देवतागण गुरुमुख से किसी तत्त्व के आदान **(ग्रहण)** उसका सदा स्मरण **(धारण)** ऊहापोह विचार रूप ज्ञान **(ज्ञान)** तथा

(प्रयोग) पर्षद में प्रकटीकरण रूप उसके प्रयोग आदि कार्यों में कुशल न होने से उसके सम्पादन में असमर्थ हैं इसलिए वे नाट्यकर्म के लायक नहीं हैं–

ग्रहणे धारणे ज्ञाने प्रयोगे चास्य सत्तम।
अशक्ता भगवन् देवा अयोग्या नाट्यकर्मणि।।
नाट्यशास्त्र, 1/22

स्वर्ग में सुख की भूयिष्ठता से देवता ऐसे आलसी और सुकुमार हो गए हैं कि वे कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकते जिसमें क्रियाशीलता और श्रम अपेक्षित हो। स्वामी के आदेश से यदि वे किसी प्रकार प्रवृत्त भी होते हैं तो भी पूर्ण पर्यवसान तो इनमें दुर्लभ ही है। 'ग्रहण' इस पद से 'पहिले गुरु के मुख से उपादान अर्थात् गुरु के मुख से विद्या को ग्रहण करना, धारण पद से उस विद्या को न भूलना, 'ज्ञान' पद से तर्क–वितर्क के साथ विचार करना, प्रयोग पद से परिषद् अर्थात् सभामण्डप में उसे प्रदर्शित करना अर्थ सूचित होता है। 'चकार के द्वारा गुरु से अधीत विद्या का बार–बार आवृत्ति करना (दुहराना) तथा व्यायाम, अभ्यास करना आदि ग्रहण होता है। देवता लोग सुख–बहुल होने के कारण स्वामी के आदेश से यदि किसी प्रकार नाट्य में प्रवृत्त भी हो जायें, तो उनके द्वारा पूर्ण समाप्ति होना दुर्लभ है, यह ग्रन्थकार का अभिप्राय है।

इसके पश्चात् इन्द्र ने कहा कि भू–लोक में ये ऋषिगण प्रत्यक्ष दृष्टिगत हो रहे हैं, वे वेदज्ञ हैं। अतः उनमे इसे नाट्यवेद के ग्रहण धारण की सामर्थ्य है। साथ ही वेद के गहन ज्ञान के ज्ञाता हैं, अतः अध्यात्म तथा उपनिषदार्थ के ग्रहण–धारण के कौशल के कारण रसादि के लिए उपयोगी सात्विक भाव के सम्पादन में समर्थ हैं। ऋषि होने के कारण ऊहापोह विचार के भी योग्य हैं और व्रत के अभ्यास में वे सशक्त होने के कारण जितश्रम होकर इसका अभिनय भी कर सकते हैं। इस प्रकार ये उदार ऋषि गण ही इस नाट्यवेद की शिक्षा के सर्वथा उपयुक्त पात्र है।

य इमे वेदगुह्यज्ञा ऋषयः संशित व्रताः।
एतेऽस्य ग्रहणे शक्ताः प्रयोगे धारणे तथा।।

वेद के मर्म को जानने वाले जो ये मन्त्रदृष्टा ऋषिगण हैं जो किसी भी विषय के अभ्यास में प्रवीण हैं, वे ही इस नाट्य के ग्रहण, धारण और अभिनयात्मक प्रयोग में समर्थ हो सकते हैं। वैसे भी नाट्यशास्त्र के 26वें अध्याय में शिष्य के गुण को बताया है।

ऊहापोहौ मतिश्चैव स्मृतिर्मेधा तथैव च।
उत्साहश्च षडेवैताञ् छिष्यस्यापि गुणान् विदुः।।

अर्थात् शिष्य के गुण भी छःऊह, अपोह, मति, स्मृति, मेधा और उत्साह हैं।

इन्द्र द्वारा वेदगुह्यज्ञ ऋषियों को ही नाट्यवेद के ज्ञान और उसके प्रयोग में सर्वथा समर्थ बताये जाने पर भी ब्रह्मा जी ने मुझसे (भरत) से कहा 'तू' पद के प्रयोग से ध्वनित होता है कि उन्होंने अन्य ऋषियों से भी कहा किन्तु मुझसे विशेष रूप से कहा हे महारद्य! तुम परिषद् में सम्मान प्राप्त हो और बड़े परिवार वाले भी हो। अतः तुम इस नाट्यवेद का ज्ञान प्राप्त कर उसका प्रयोग करने में सर्वथा हो, इसलिए तुम्हीं इसका ज्ञान प्राप्त करो। इसके पश्चात् सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया और फिर अपने सौ पुत्रों को पहले नाट्यवेद पढ़ाया, तदन्तर उसके प्रयोग रूप नाट्यलक्षण शास्त्र का

तात्विक ज्ञान भी कराया अर्थात् कहने का आशय यह है कि भरत ने अपने पुत्रों को नाट्यवेद का सैद्धांन्तिक और प्रायोगिक दोनों प्रकार का तात्विक ज्ञान कराया। ब्रह्मा जी की आज्ञा तो शिरोधार्य की ही साथ ही भरत ने यह भी ध्यान में रखा कि इस नाट्यवेद के प्रयोग से प्रजाजन का अनुरंजन भी होना चाहिए। पितामह ब्रह्मा जी की आज्ञा और लोक की गुणग्राहकता के कारण हमने शाण्डिल्य से लेकर 105 पुत्रों तथा शिष्यों को नाट्य वेद की भूमिकाओं का विभाजन करते हुए नाट्यवेद का अध्यापन किया और उसके प्रयोगरूप नाट्यशास्त्र को भी पढ़ाया तथा जो जिस कार्य के लिए योग्य था उसे उसमें नियुक्त कर दिया। ऐसा दृष्टिकोण रखते हुए अपने पुत्रों को नाट्य वेद की शिक्षा दी। पुत्रों के नाम ये हैं–

शाण्डिल्यं चापि वात्स्यं च कोहलं दन्तिलं तथा।
जटिलाम्बष्टकौ चैव तण्डुमग्निशिखं तथा।।

सैन्धवं सपुलोमानं शाड्वलिं विपुलं तथा।
कपिंजलिं बादिरं च यमधूम्रायणौ तथा।।

जम्बुध्वजं काकजंघम् स्वर्णकं तापसं तथा।
केदारिं शालिकर्णं च दीर्घगात्रं च शालिकम्।।

कौत्सं ताण्डायनिं चैव पिंगलं चित्रकं तथा।
बन्धुलं भल्लकं चैव मुष्टिकं सैन्धवायनम्।।

तैतिलं भार्गवं चैव शुचिं बहुलमेव च।
अबुधां बुधासेन च पाण्डुकर्ण सुकेरलम्।।

ऋजुकं मण्डकं चैव शम्बरं वजुलं तथा।
मागधं सरलं चैव कर्तारं चोग्रमेव च।।

तुषारं पार्षदं चैव गौतमं बादरायणम्।
विशालं शबलं चैव सुनाभं मेषमेव च।।

कालियं भ्रमरं चैव तथा पीठमुखं मुनिम्।
नखकुट्टाश्मकुट्टौ च षट्पदं सोत्तमं तथा।।

पादुकोपाहनौ चैव श्रुति च षास्वरं तथा।
अग्निकुण्ठाज्यकुण्डौ च वितण्डताण्ड्यमेव च।।

कर्तराक्षं हिरण्याक्षं कुशलं दुसहं तथा।
लाजं भयानकं चैव वीभत्सं सविचक्षणम्।।

पुण्ड्राक्षे पुण्ड्रनासं च असितं सितमेव च।
विद्युज्जिह्वं महाजिह्वं शालंकायनमेव च।।

श्यामायनं मठरं च लोहितांगं तथैव च।
संवर्त्तकं पंचशिख त्रिशिखं शिखमेव च।।

शंखवर्णमुखं षण्डं शंकुकर्णमथापि च।
शक्रनेमिं गभस्तिं चाप्यंशुमालिं शठं तथा।।

विद्युतं शातजंघं च रौद्रंवीरमथापि च।।
पितामहाज्ञयाऽस्माभिर्लोकस्य च गुणेप्सया।।

नाट्यशास्त्र, 1/26–39

अर्थात् शाण्डिल्य, वात्स्य, कोहल, दन्तिल, जटिल, अम्बष्ठक, तण्डु, अग्निशिख, सैन्धव, सपुलोमा, शाड्वलि, विपुल, बन्धुल, भक्तक, मुष्टिक, सैन्धव, कपिंजलि, बदि, यम, धूम्रायण, जम्बुध्वज, काकजङ्घ, स्वर्णक, तापस, केदारि, शालिकर्ण, दीर्घगात्र, शालिक, कौत्स, ताण्डायनि, पिंगल, चित्रक, तैतिल, भार्गव, सूचि, बहुल, अबुधा, बुधासेन, पाण्डुकर्ण, सुकेरल, ऋजुक, मण्डक, शम्बर, वंजुल, मागधा, साल, कर्त्ता, उग्र, तुषाद, पार्षद, गौतम, बादरायणि, विशाल, शबल, सुनाभ, मेष, कर्तराक्ष, हिरण्याक्ष, कुशल, दुसह, जाल, भयानक, वीभत्स, विचक्षण, कालिय, भ्रमर, पीठमुख, मुनि, तरुकुट्ट, अश्मकुट्ट, षट्पद, सोत्तम, पादुक, उपानह, श्रुतिक, षट्स्वर, अग्निकुण्ठ, आज्यकुण्ड, वितण्ड्य, ताण्डय, पुण्ड्रनास, असित, सित, विद्युज्जिह्व, महाजिह्व, शालङ्कायन, श्यामायन, माठर, लोहिताङ्ग, संवर्तक, पंचशिख, त्रिशिख, शिख, शङ्खवर्णमुख, षण्ड, शङकुकर्ण, शक्रनेमि, गर्भास्त, अंशुमाली, शठ, विद्युत, शातजङ्ग और रौद्रवीर आदि

प्रयोजितं पुत्रशतं मया भूमिविभागशः।
यो यस्मिन् कर्मणि यथा योग्यस्तस्मिन् स योजितः।।

नाट्यशास्त्र, 1/40

पितामह ब्रह्मा की आज्ञा एवं लोगों की ग्राहिता को ध्यान में रखते हुए मैंने अपने सौ पुत्रों को योग्यता के अनुसार नाट्य की भूमिका में नियोजित कर दिया अर्थात् जो जिस प्रकार के अभिनय के लायक था उसको उसी प्रकार की भूमिका देकर सभी को यथायोग्य कार्य में नियुक्त कर दिया गया।

बोध प्रश्न–1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) का चिन्ह लगाइये
   I. नाट्यशास्त्र का रचनाकार कौन है। (भरत/भामह)
   II. दशरूपक का लेखक कौन है। (धनंजय/धनिक)
   III. कला का उत्कृष्ट रूप क्या है। (काव्य/अलंकार)
2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   I. ग्रहण एवं धारण करने की योग्यता..... है। (कुशल में/विदग्ध में)
   II. ऊहापोह एवं तर्क–वितर्क करने में समर्थ.....है। (कुशल में/विदग्ध में)
   IV. अभिनय करते समय थकान का अनुभव.....नही करता है। (जितश्रमी/विदग्ध)
   IV. व्यायामशील .....है। (प्रगल्भ/जितश्रमी)

बोध प्रश्न–2

1. पात्रों के अभिनय करने की योग्यता को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

2. भरत मुनि के सौ पुत्रों के नाम को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 1

1. व्यक्तियों के अभिनय करने की योग्यता वाले पात्रों कुशल, विदग्ध, प्रगल्भ एवं जितश्रमी को स्पष्ट कीजिए?

1.3 सारांश

श्रव्य काव्यों में रघुवंश आदि का ग्रहण होता है, जो केवल पठन या श्रवण के विषय हैं। ये अभिनेय नहीं हैं। नाटकों में श्रव्य की अपेक्षा हृदयग्राहिता, मनोरंजकता, आकर्षकता, भावाभिव्यंजकता और विषय की विविधता अधिक होती है, अतः श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य अधिक जनप्रिय होता है। अतएव कहा गया है कि–'**काव्येषु नाटकं रम्यम्।**' काव्य की अपेक्षा नाटक अधिक रमणीय होता है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाटकों की विशेषता का उल्लेख करते हुए कहा है कि–नाटक में ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, नवीन योजना, क्रिया–कुशलता आदि सभी का समन्वय रहता है, अतएव नाटकों का महत्त्व श्रव्य काव्य की अपेक्षा बहुत अधिक है–

''न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।''

नाट्यशास्त्र 1/16

इस इकाई में अभिनय करने वाले भरतमुनि के सौ पुत्रों के नाम एवं कुशल, विदग्ध, प्रगल्भ एवं जितश्रमी अभिनेता के गुणों को स्पष्ट किया जायेगा।

1.4 शब्दावली

शिल्प	–	कारीगर
गृह	–	घर
नृत्य	–	नाच
अभिनय	–	अंगों के द्वारा कला का प्रदर्शन
हस्त	–	हाथ
कुक्षि	–	पेट
कटि	–	कमर

1.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अभिज्ञानशाकुन्तलम्–कालिदास–संपादक डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी, प्रकाशन रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1962
- अमरकोष–अमर सिंह–निर्णयसागर प्रेस, बम्बई 1940
- उत्तररामचरितम्–भवभूति–संपादक डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी, साहित्यसंस्थान इलाहाबाद 1974
- काव्यप्रकाश–मम्मट–संपादक विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल प्रकाशन, लि॰ वाराणसी चतुर्थ संस्करण, सं॰ 2027
- काव्यादर्श–दण्डी–चौखम्बा संस्कृत सिरीज, काशी 1958
- कालिदास ग्रन्थावली–पं॰ सीताराम चतुर्वेदी–अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी द्वितीय संस्करण सं॰ 2007 वि॰
- नाटकलक्षणरत्नकोश–सागरनन्दी–संपादक बाबूलाल शुक्ल, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1972
- नाट्यशास्त्रम्–संपादक पं॰ केदारनाथ, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1943
- नृत्याध्याय–अशोकमल्ल–संपादक वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1971
- दशरूपकम्–धनंजय–संपादक भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1967
- ध्वन्यालोक–आनन्दवर्धन–व्याख्याकार विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लि॰ वाराणसी, प्रथम संस्करण 1962
- प्रतिमानाट्कम–भास–संपादक डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायण लाल इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1953
- प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्–भास–संपादक कपिलदेव गिरि, प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1958
- भावप्रकाशनम्–शारदातनय–संपादक मदनमोहन अग्रवाल, राधकृष्ण जनरल स्टोर, सादाबाद, मथुरा, प्रथम संस्करण 1978
- मालविकाग्निमित्रम्–कालिदास–संपादक संसारचन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, 1971
- स्वप्नवासवदत्तम्–भास–संपादक श्रीमती प्रेमा अवस्थी एवं दयाशंकर, साहित्य निकेतन, कानपुर, प्रथम संस्करण 1971
- अभिनव नाट्यशास्त्र–पं॰ सीताराम चतुर्वेदी, प्रकाशन अखिल भारतीय विक्रम परिषद् बनारस, संवत् 2008
- काव्यशास्त्र– डॉ॰ भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1972
- नाटक के तत्त्व–मनोवैज्ञानिक अध्ययन–कमलिनी मेहता, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1964
- नाट्यकला–रघुवंश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1961
- नाट्यकला प्राच्य एवं पाश्चात्य, सुदर्शन मिश्र, भारत मनीषा वाराणसी 1974

- भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच– सीताराम चतुर्वेदी–हिन्दी समिति उ॰ प्र॰, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1964
- भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण–वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1971
- भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच–डॉ॰ रामसागर त्रिपाठी, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण
- भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा और दशरूपक–डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं पृथ्वीनाथ द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1971
- भारतीय रंगमंच– आद्यरंगाचार्य–हिन्दी अनु॰ शुभावर्मा, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया नई दिल्ली 1971
- रंगमंच–शेल्डान चेनी–हिन्दी अनु॰ श्री कृष्णदास, हिन्दी समिति उ॰ प्र॰, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1965
- रंगमंच कला और दृष्टि–गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1976
- वैदिक कोष–डॉ॰ सूर्यकान्त, वैदिक रिसर्च समिति, का॰ हि॰ वि॰ वि॰, वाराणसी 1963
- संस्कृत नाटक–कीथ–हिन्दी अनु॰ उदयभान सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1971
- संस्कृत नाटक समीक्षा–इन्द्रपाल सिंह, साहित्य निकेतन, कानपुर, प्रथम संस्करण 1960
- संस्कृत नाट्यकला–रामलखन शुक्ल, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1971
- संस्कृत नाट्यशास्त्र एक पुनर्विचार–जयकुमार, त्रिवेणी प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962
- हमारी नाट्य परम्परा–श्रीकृष्ण, साहित्यकार संसद, प्रयाग 1956
- हिन्दी अभिनव–भारती (अभिनव भारती के तीन अध्याय) भाष्य विश्वेश्वर, सं॰ नगेन्द्र, हिन्दी–विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली प्रथम संस्करण 1960
- हिन्दी नाटक का उद्‌भव एवं विकास–दशरथ ओझा, हिन्दी अनुसंधान परिषद् दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 1961

ENGLISH BOOK

- Abhinay Darpan-Nandikeshwar-Ed, M. M. Ghosh-Pub Metropolitan printing publishing house L T D . Calcutta-1934
- A Bibliography of the Sanskrit Drama-Montogomary Schuyler, the Columbia university press, new York -1906
- A History of Sanskrit Literature-A.B.Keith,Oxford University Press,London. First Edn. 1920
- A History of Sanskrit Literature-A.A.Macdonell, Motilal Banarasi Das, Delhi-1962

- A Monograph on Bharata's Natya-Sastra-P.S.R.Appa Rao& P. Sri Ram Shashtri-Natyamala Publishers, Hyderabad-1967
- A Sanskrit English Dictionary-SIR Monier.M. Williams, Oricntal Publishers, Delhi
- Bharat Natya and Its Costume –G.S.Ghurya, Poplar Book Depot, Bombay- 1958
- Bharitya Natya Castram-J.Grosset-Lyons, Paris-1898
- Bharat Natya Manjari-G.K.Bhat, Bhandarkar Reserch Insitute, Poona First Edition.
- Comparative Aesthetics-Indian Aesthetics-Vol.-I-K.C.Pandey, The Chaukgamba Sanskrit Series, Banaras 1950
- Concept of Ancirnt Indian Theatre-M.Christophar Byraki, Munshiram Manohar Lal, Delhi, First Edn. 1974
- Confliction in Sanskrit Drama-Minakshi Dalal, Samaiya Publication PVT. LTD. Bombay- 1973
- Drama and Dramatics- K.P.Kulkarni, K.P.Kulkarni Satara city 1972
- Drama Stage and Audience J.L.Styan,Cambridge University Press, London. First Edn. 1975
- History of Sanskrit Poetics-P.V.Kane, 1951
- Indian Drama-Sten Konow-Eng.Tr.by Dr.S.N.Ghosal, General Printers & Publishers, Calcutta,First Edn. 1968
- Indian Theatre-C.B .Gupta, Motilal Banarasi Das, Banaras 1954
- Indian Theatre- R.K.Yajnik,United Dn. London 1933
- Natak Lakshan Ratnakosh-Ed. V Raghvan & Myles Dillon, The American Philosophcal Society, Philadelphia 1960
- Natya-Nritta and Nritya – K.M.Varma, Orient Longmans,Bombay, first Edn.1957
- Sanskrit Drama and Dramaturgy- Dr. Biswanath Bhattacharya Bharat Manisha, Varanasi first Edn. 1974
- Studies in Sanskrit Dramatic Criticism-T.G.Mainkar, Motilal Banarasi Das, Delhi 1971
- Studies in the Natya Sastra – G.H.Tarlekar, Motilal Banarsi Das, DELHI First Edn. 1975
- The Development of the Theatre-A.Nicoll,George G.Marrap & Co. LTD first Edn. 1927
- The Greek Theatre and its Drame-Roy C. Flickinger, the university press, Chicago 1961

- The Natya Sastra- Bharat- Eng. Tr. Manomohan Ghosh, The Royal Asiatic Society of Bengal. Calcutta 1950
- The Natya Sastra –Bharat- Ed. M.M.Ghosh, Manisha Granthalay pvt. Ltd. Calcutta 1967
- The Theatre- Sheldon Cheney, Tudor 1947
- Traditional Indian Theatre- Multiple Streams. National Book Trust. N. Delhi. First Edn. 1980

1.6 बोध/अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न–1

1. (i) भरत (ii) धनंजय (iii) काव्य
2. (i) कुशल में (ii) विदग्ध में (iii) जितश्रमी (iv) प्रगल्भ

बोध प्रश्न–2

1. पात्रों के अभिनय की योग्यता को ब्रह्म जी ने निर्देश दिया कि–

कुशला ये विदग्धाश्च प्रगल्भाश्च जितश्रमाः।
तेष्वयं नाट्यसंज्ञो हि वेदः संक्राम्यतां त्वया।।

अर्थात् अपने देवों से ऐसे पात्रों का चयन करो जो इस नाट्यसंज्ञक वेद के ग्रहण धारण के योग्य हो, उसके विषय में ऊहापोह तर्क–वितर्क करने में समर्थ हों, जिससे रंगमंच पर आकर वे दर्शकों के सामने बोलने में संकोच का अनुभव बिल्कुल न करें तथा जो जितश्रम हो, अर्थात् अभिनय करते–करते कभी थकान का अनुभव न करें। इसके लिए उनका व्यायामशील होना नितान्त आवश्यक है। उक्त गुणों से सम्पन्न नट ही इस नाट्यवेद का सम्यक् व्यवहार कर सकते हैं। इसके पश्चात् ब्रह्मा से देवताओं में नाट्य के विनियोजन की बात सुनकर हाथ जोड़ते हुए इन्द ने प्रणत हो पितामह से निवेदन किया हे भगवन्! ये देवतागण गुरुमुख से किसी तत्त्व के आदान, उसका सदा स्मरण, ऊहापोह विचार रूप ज्ञान तथा पर्षद में प्रकटीकरण रूप उसके प्रयोग आदि कार्यों में कुशल न होने से उसके सम्पादन में असमर्थ हैं इसलिए वे नाट्यकर्म के लायक नहीं है–

ग्रहणे धारणे ज्ञाने प्रयोगे चास्य सत्तम।
अशक्ता भगवन्! देवा अयोग्या नाट्यकर्मणि।।

स्वर्ग में सुख की भूयिष्ठता से देवता ऐसे आलसी और सुकुमार हो गए हैं कि वे कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकते जिसमें क्रियाशीलता और श्रम अपेक्षित हो। स्वामी के आदेश से यदि वे किसी प्रकार प्रवृत्त भी होते हैं तो भी पूर्ण पर्यवसान तो इनमें दुर्लभ ही है। 'ग्रहण' इस पद से 'पहिले गुरु के मुख से उपादान अर्थात् गुरु के मुख से विद्या को ग्रहण करना, धारण पद से उस विद्या को न भूलना, 'ज्ञान' पद से तर्क–वितर्क के साथ विचार करना, प्रयोग पद से परिषद् अर्थात् सभामण्डप में उसे प्रदर्शित करना अर्थ सूचित होता है। 'चकार' के द्वारा गुरु से अधीत विद्या का बार–बार आवृत्ति करना (दुहराना) तथा व्यायाम, अभ्यास करना

आदि ग्रहण होता है। देवता लोग सुख–बहुल होने के कारण स्वामी के आदेश से यदि किसी प्रकार नाट्य में प्रवृत्त भी हो जायें, तो उनके द्वारा पूर्ण समाप्ति होना दुर्लभ है, यह ग्रन्थकार का अभिप्राय है। इसके पश्चात् इन्द्र ने कहा कि भू–लोक में ये ऋषिगण प्रत्यक्ष दृष्टिगत हो रहे हैं, वे वेदज्ञ है। अतः उनमें इसे नाट्यवेद के ग्रहण धारण की सामर्थ्य है। साथ ही वेद के गुह्य ज्ञान के ज्ञाता हैं, अतः अध्यात्म तथा उपनिषदर्थ के ग्रहण धारण के कौशल के कारण रसादि के लिए उपयोगी सात्विक भाव के सम्पादन में समर्थ हैं। ऋषि होने के कारण ऊहापोह विचार के भी योग्य हैं और व्रत के अभ्यास में सशक्त होने के कारण वे जितश्रम होकर इसका अभिनय भी कर सकते हैं। इस प्रकार ये उदार ऋषि गण ही इस नाट्यवेद की शिक्षा के सर्वथा उपयुक्त पात्र हैं।

य इमे वेदगुह्यज्ञा ऋषयः संशित व्रताः।
एतेऽस्य ग्रहणे शक्ताः प्रयोगे धारणे तथा।।

वेद के मर्म को जानने वाले जो ये मन्त्रदृष्टा ऋषिगण हैं जो किसी भी विषय के अभ्यास में प्रवीण हैं, वे ही इस नाट्य के ग्रहण, धारण और अभिनयात्मक प्रयोग में समर्थ हो सकते हैं। वैसे भी नाट्यशास्त्र के 26वें अध्याय में शिष्य के गुण को बताया–

ऊहापोहौ मतिश्चैव स्मृतिर्मेधा तथैव च।
उत्साहश्च षडेवैताञ् छिष्यस्यापि गुणान् विदुः।।

अर्थात् शिष्य के गुण भी छःऊह, अपोह, मति, स्मृति, मेधा और उत्साह हैं। इन्द्र द्वारा वेदगुह्यज्ञ ऋषियों को ही नाट्यवेद के ज्ञान और उसके प्रयोग में सर्वथा समर्थ बताये जाने पर भी ब्रह्मा जी ने मुझसे (भरत) से कहा 'तू' पद के प्रयोग से ध्वनित होता है कि उन्होंने अन्य ऋषियों से भी कहा किन्तु मुझसे विशेष रूप से कहा हे महारद्य! तुम परिषद् में सम्मान प्राप्त हो और बड़े परिवार वाले भी हो। अतः तुम इस नाट्यवेद का ज्ञान प्राप्त कर उसका प्रयोग करने में सर्वथा हो, इसलिए तुम्हीं इसका ज्ञान प्राप्त करो। इसके पश्चात् सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया और फिर अपने सौ पुत्रों को पहले नाट्यवेद पढ़ाया, तदन्तर उसके प्रयोग रूप नाट्यलक्षण शास्त्र का तात्विक ज्ञान भी कराया अर्थात् कहने का आशय यह है कि मैंने अपने पुत्रों को नाट्यवेद का सैद्धांन्तिक और प्रायोगिक दोनों प्रकार का तात्विक ज्ञान कराया। ब्रह्मा जी की आज्ञा तो शिरोधार्य की ही, साथ ही भरत ने यह भी ध्यान में रखा कि इस नाट्यवेद के प्रयोग से प्रजाजन का अनुरंजन भी होना चाहिए।

2. पितामह ब्रह्मा जी की आज्ञा और लोक की गुणग्राहकता के कारण हमने शाण्डिल्य से लेकर 100 पुत्रों तथा शिष्यों को नाट्य वेद की भूमिकाओं का विभाजन करते हुए नाट्यवेद का अध्यापन किया और उसके प्रयोगरूप नाट्यशास्त्र को भी पढ़ाया तथा जो जिस कार्य के लिए योग्य था उसे उसमें नियुक्त कर दिया। ऐसा दृष्टिकोण रखते हुए अपने सौ पुत्रों को नाट्य वेद की शिक्षा दी। पुत्रों के नाम ये हैं–

शाण्डिल्यं चापि वात्स्यं च कोहलं दन्तिलं तथा।
जटिलाम्बष्टकौ चैव तण्डुमग्निशिखं तथा।।

सैन्धवं सपुलोमानं शाड्वलिं विपुलं तथा।
कपिंजलिं बादिरं च यमधूम्रायणौ तथा।।

जम्बुध्वजं काकजंघम् स्वर्णकं तापसं तथा।
केदारिं शालिकर्णं च दीर्घगात्रं च शालिकम्।।

कौत्सं ताण्डायनिं चैव पिंगलं चित्रकं तथा।
बन्धुलं भल्लकं चैव मुष्टिकं सैन्धवायनम्।।

तैतिलं भार्गवं चैव शुचिं बहुलमेव च।
अबुधां बुधासेन च पाण्डुकर्ण सुकेरलम्।।

ऋजुकं मण्डकं चैव शम्बरं वजुलं तथा।
मागधं सरलं चैव कर्तारं चोग्रमेव च।।

तुषारं पार्षदं चैव गौतमं बादरायणम्।
विशालं शबलं चैव सुनाभं मेषमेव च।।

कालियं भ्रमरं चैव तथा पीठमुखं मुनिम्।
नखकुट्टाश्मकुट्टौ च षट्पदं सोत्तमं तथा।।

पादुकोपाहनौ चैव श्रुति च षास्वरं तथा।
अग्निकुण्ठाज्यकुण्डौ च वितण्डताण्ड्यमेव च।।

कर्तराक्षं हिरण्याक्षं कुशलं दुसहं तथा।
लाजं भयानकं चैव वीभत्सं सविचक्षणम्।।

पुण्ड्राक्षे पुण्ड्रनासं च असितं सितमेव च।
विद्युज्जिह्वं महाजिह्वं शालंकायनमेव च।।

श्यामायनं मठरं च लोहितांगं तथैव च।
संवर्त्तकं पंचशिख त्रिशिखं शिखमेव च।।

शंखवर्णमुखं षण्डं शंकुकर्णमथापि च।
शक्रनेमिं गभस्तिं चाप्यंशुमालिं शठं तथा।।

विद्युतं शातजंघं च रौद्रंवीरमथापि च।।
पितामहाज्ञयाऽस्माभिर्लोकस्य च गुणेप्सया।।

अर्थात् शाण्डिल्य, वात्स्य, कोहल, दन्तिल, जटिल, अम्बष्ठक, तण्डु, अग्निशिख, सैन्धव, सपुलोमा, शाड्वलि, विपुल, बन्धुल, भक्तक, मुष्टिक, सैन्धव, कपिंजलि, बदि, यम, धूम्रायण, जम्बुध्वज, काकजङ्घ, स्वर्णक, तापस, केदारि, शालिकर्ण, दीर्घगात्र, शालिक, कौत्स, ताण्डायनि, पिंगल, चित्रक, तैतिल, भार्गव, सूचि, बहुल, अबुधा, बुधासेन, पाण्डुकर्ण, सुकेरल, ऋजुक, मण्डक, शम्बर, वंजुल, मागधा, साल, कर्त्ता, उग्र, तुषाद, पार्षद, गौतम, बादरायणि, विशाल, शबल, सुनाभ, मेष, कर्तराक्ष, हिरण्याक्ष, कुशल, दुसह, जाल, भयानक, वीभत्स, विचक्षण, कालिय, भ्रमर, पीठमुख,

मुनि, तरुकुट्ट, अश्मकुट्ट, षट्पद, सोत्तम, पादुक, उपानह, श्रुतिक, षट्स्वर, अग्निकुण्ठ, आज्यकुण्ड, वितण्ड्य, ताण्डय, पुण्ड्रनास, असित, सित, विद्युज्जिह्व, महाजिह्व, शालङ्कायन, श्यामायन, माठर, लोहिताङ्ग, संवर्तक, पंचशिख, त्रिशिख, शिख, शङ्खवर्णमुख, षण्ड, शङ्कुकर्ण, शक्रनेमि, गर्भास्त, अंशुमाली, शठ, विद्युत, शातजङ्ग और रौद्रवीर।

प्रयोजितं पुत्रशतं मया भूमिविभागशः।
यो यस्मिन् कर्मणि यथा योग्यस्तस्मिन् स योजितः।।

पितामह ब्रह्मा की आज्ञा एवं लोगों की ग्राहिता को ध्यान में रखते हुए मैंने अपने सौ पुत्रों को योग्यता के अनुसार नाट्य की भूमिका में नियोजित कर दिया अर्थात् जो जिस प्रकार के अभिनय के लायक था उसको उसी प्रकार की भूमिका देकर सभी को यथायोग्य कार्य में नियुक्त कर दिया गया।

अभ्यास प्रश्न–

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY